ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 35-42
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

डॉ. राम कुमार
प्राचार्य, मरुधर महिला विद्यापीठ, पल्लू, हनुमानगढ़.

Corresponding Author :

डॉ. राम कुमार
प्राचार्य, मरुधर महिला विद्यापीठ, पल्लू, हनुमानगढ़.

सर्वोदय : सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण

प्रस्तावना : सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ है **"सभी का उदय"**, अर्थात् समस्त समाज का कल्याण। महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धांत में समाज के सबसे अंतिम व्यक्ति तक लाभ पहुँचाने पर जोर दिया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य सर्वोदय विचारधारा का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण करना है, ताकि यह समझा जा सके कि मानव मूल्यों के आधार पर समाज का निर्माण किस प्रकार संभव है। इसमें सर्वोदय दर्शन के दार्शनिक आधार, मानवीय मूल्य, व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंध, तथा आधुनिक संदर्भ में सर्वोदय की प्रासंगिकता का विस्तृत अध्ययन किया गया है [1]।

मानव मूल्य, स्वतन्त्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व

मनुष्य को सामाजिक आधार जिन तत्वों से मिलता है, उन्हें हम **मूल्य** कहते हैं। सर्वोदय दर्शन में जीवन को एक विद्या (विज्ञान) और कला के मिश्रित रूप में देखा जाता है। हमारे प्राचीन महाकाव्यों एवं स्मृतियों में ऐसे सामाजिक ढाँचे का उल्लेख मिलता है जिसमें ब्रह्म को विद्या और योगशास्त्र (व्यावहारिक कला) के द्विविध स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। जीवन को मात्र शास्त्र (सिद्धांत) मान लेना उसके अर्थ की एकांगी विवेचना होगी, क्योंकि यदि जीवन केवल शास्त्र बनकर रह जाए तो वह नीरस और निरुपयोगी हो जाएगा। वास्तव में, जीवन एक कला भी है जिसकी सार्थकता उसके सृजनात्मक और व्यवहारिक पक्ष में निहित है। मानव आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कला का जन्म होता है; जब हमें समाज में किसी नयी वस्तु या समाधान की आवश्यकता महसूस होती है तो हम उसके आविष्कार या खोज की ओर अग्रसर होते हैं। उदाहरणस्वरूप, आदिम मानव को जब ठंड लगती थी तो उसने ऊष्मा की आवश्यकता अनुभव की और आग प्रज्ज्वलित करने के उपाय खोजे – यही आवश्यकता आधारित खोज योगशास्त्र का आधार बनी। इस प्रकार

मूल्य, विद्या और कला के संतुलन से जीवन एवं समाज का विकास होता है।

सर्वोदयी समाज में **व्यक्ति की स्वतन्त्रता** को मुख्य लक्ष्य मानकर सामाजिक संरचना का विश्लेषण किया जाता है। व्यक्ति यदि स्वतंत्र होगा तभी वह अपनी प्रतिभा और मानवीय गुणों का पूर्ण विकास कर सकेगा। जहाँ कहीं व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होता है, या उसके होने का अंदेशा भी बनता है, वह स्थिति व्यक्ति के अस्तित्व के लिए खतरा बन जाती है। अगर समाज में किसी व्यक्ति को सम्माननीय स्थान नहीं मिलता, तो वह समाज के प्रति उदासीन होने लगता है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ही व्यक्ति को समाज की सेवा के लिए प्रेरित करती है और समाज-कल्याण के प्रति समर्पित बनाती है। इसके विपरीत, यदि व्यक्ति की स्वतंत्रता का दमन होता है तो वह एक जीवंत सजीव सत्ता से निर्जीव वस्तु की तरह व्यवहार करने लगता है। उसकी सामाजिक सृजनशीलता कुण्ठित हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उसका नैतिक पतन प्रारम्भ हो जाता है। संक्षेप में, व्यक्ति और समाज के बीच स्वस्थ संबंध बनाए रखने के लिए व्यक्ति की स्वतंत्रता और सम्मान की रक्षा अनिवार्य है।

मनुष्य प्रकृति से ही एक **सामाजिक प्राणी** है। समाज के बाहर रहकर वह अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकता – समाज से बाहर का एकाकी अस्तित्व न केवल उसके लिए असंभव है बल्कि मनुष्य की प्रकृति के भी विरुद्ध है। हाँ, समाज में रहते हुए व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुछ आवश्यक मर्यादाएँ भी होनी चाहिएँ, क्योंकि असीमित स्वतंत्रता अराजकता को जन्म देती है। यदि व्यक्ति समाज से अधिकारों की माँग करता है, तो समाज उसे अधिकारों के साथ कुछ कर्तव्य भी सौंपता है। व्यक्ति को अपने विकास की प्रक्रिया एक सीमित सामाजिक दायरे में रहकर ही पूरी करनी चाहिए और उस दायरे से बाहर नहीं जाना चाहिए, अन्यथा वह अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करते हुए अनजाने में दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा बन सकता है। हर व्यक्ति को **"एक सब के लिए और सब एक के लिए"** के भावना-पूर्ण सिद्धांत के साथ पारस्परिक तालमेल से आगे बढ़ना चाहिए। जब समाज के प्रत्येक सदस्य के हित के लिए सब मिलकर कार्य करेंगे और प्रत्येक व्यक्ति को सबका समर्थन मिलेगा, तभी समाज में सच्चे अर्थों में एकता स्थापित हो सकेगी। यदि मनुष्य इस सामूहिक मर्यादा से बाहर निकलकर केवल 自己的 स्वार्थ की पूर्ति में लग जाएगा तो समाज में लोभ और विभाजन की भावना घर कर जाएगी तथा व्यक्ति और समाज दोनों का पतन अवश्यंभावी होगा।

सहानुभूति एवं परोपकार का महत्व

जीवन को एक कला मानते हुए यदि हम सृष्टि के समस्त प्राणियों के साथ अपने संबंधों को देखते हैं, तो पाएंगे कि सभी में परस्पर सम्मान और सहानुभूति की भावना विकसित करना आवश्यक है। मनुष्य सदैव सुखी रहना चाहता है और यह प्रयास करता है कि उसके जीवन में दुख की अनुभूति न्यूनतम हो। फिर भी, तथ्य यह है कि मानव जीवन सुख और दुख के मिश्रण से बना है। कुछ विचारकों का मत रहा है कि मनुष्य स्वभावतः स्वार्थी होता है। **हॉब्स** जैसे पाश्चात्य दार्शनिक ने तो यहाँ तक कहा था कि प्राकृतिक अवस्था में प्रत्येक मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए दूसरों से संघर्ष करेगा [2]। लेकिन हॉब्स का यह कथन संपूर्ण मानव समाज पर लागू नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थी हो, यह आवश्यक नहीं – समाज में निस्वार्थ और परोपकारी व्यक्तियों की भी कमी नहीं होती [3]। वास्तव में, मनुष्य में **परोपकारिता** का गुण भी होता है जिसके कारण वह दूसरों के दुःख को अपना दुःख मानने लगता है और उनकी पीड़ा दूर करने हेतु तत्पर होता है।

दूसरे के दुःख में शामिल होने की यह प्रक्रिया **सहानुभूति** कहलाती है, और इसी के ऊपर समाज की बुनियाद टिकी हुई है। जब मनुष्यों में आपसी प्रेम उत्पन्न होता है और वे एक-दूसरे के जीवन में शामिल होकर दुःख-सुख बाँटते हैं, तब वास्तविक सामाजिक एकता का निर्माण होता है। सहानुभूति मनुष्य को

सहयोग और त्याग की भावना से प्रेरित करती है। इसके लिए जीवन में उचित आचार-विचार की आवश्यकता होती है, जिसे हम योगशास्त्र या सदाचरण कहते हैं। योगशास्त्र के नियम मानव को अनुशासित करते हैं और उसे सच्चे अर्थों में मानवता की सेवा के योग्य बनाते हैं। सहानुभूति और सहयोग की भूमिका से जब हम जीवन का अवलोकन करते हैं, तब पाते हैं कि जीवन का मुख्य गुण **परस्पर संवेदना** बनकर उभरता है। इसी से हमें यह वास्तविक ज्ञान होता है कि किसी का अहित करना अंततः अपने ही अहित करने के समान है, क्योंकि समाज में हम सब एक-दूसरे पर निर्भर हैं।

मनुष्य जैसा व्यवहार दूसरे के साथ करता है, प्रायः वैसा ही व्यवहार उसे बदले में प्राप्त होता है। अर्थात् **"जैसा बोओगे, वैसा ही काटोगे"** – यदि हम समाज में दूसरों के प्रति सद्भावना और परोपकार का भाव रखेंगे तो वैसी ही भावना हमें अन्य लोगों से प्राप्त होगी। इसलिए सर्वोदयी आदर्श की पूर्ण विकसित अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है कि हम निस्वार्थ भाव से, बिना प्रतिफल की कामना किए, दूसरों की भलाई करें। अगर हम परोपकार केवल अपने लाभ लेने की दृष्टि से करेंगे तो उसका प्रभाव स्थायी नहीं होगा। जब निस्वार्थ सेवा और परोपकार की भावना समाज में प्रसारित होगी, तभी सच्चे अर्थों में सर्वोदय (सभी का उदय) की भावना का विकास होगा। जीवन एक कला है और हमें उसे एक उत्तम कला के रूप में परिवर्तित करते हुए समाज के समक्ष आदर्श रूप में स्थापित करना है।

कुछ सामाजिक समझौतावादी विचारकों की धारणा रही है कि प्राकृतिक अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के प्रति द्वेषभाव रखता है, परिणामस्वरूप समाज में निरंतर प्रतिस्पर्धा और संघर्ष होता रहता है। ऐसी दृष्टिकोण मानव-समाज की वास्तविक प्रवृत्ति को नहीं समझ पाता, क्योंकि यदि प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ़ अपना ही लाभ सोचेगा तो सहयोग की भावना का लोप हो जाएगा। हमें ऐसे समाज का विकास करना है जिसमें प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग की भावना प्रमुख हो। मानव स्वभाव में निहित सहकार को जागृत करना सर्वोदय समाज का लक्ष्य है। आज समाज में लोग जोखिम उठाने से कतराते हैं, किंतु जब तक कुछ सकारात्मक जोखिम नहीं उठाए जाएंगे, तब तक समाज के विकास के लिए किसी नयी बुनियाद की शुरुआत नहीं हो सकती। विभिन्न योगशास्त्रों (धार्मिक और नैतिक ग्रंथों) में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि बिना त्याग और साहस के महान उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती। समाज के हित के लिए पहल का पहला कदम व्यक्ति को स्वयं उठाना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति तुम्हारा अहित कर रहा है, तो तुम उसके प्रति भी हितकारी व्यवहार करो। यह परंपरा कठिन अवश्य है, परंतु विश्व का नैतिक नियम यही बताता है कि जो अहित कर रहा है उसी का अंततः सर्वनाश हो जाएगा। अतः **प्रतिशोध की भावना** छोड़कर हमें उदारता और मानवता की भावना से कार्य आरंभ करना चाहिए।

मनुष्य को **कुछ पाने के लिए कुछ खोने** की सिद्धांत पर चलना चाहिए। पहले थोड़ा त्याग करने और बाद में फल पाने की भावना – "**पहले दो बाद में लो**" – यदि समाज में विकसित होगी तो एकता एवं सद्भावना का विकास संभव होगा। दूसरे शब्दों में, आप समाज से जो अपेक्षा रखते हैं, उसकी पूर्ति सबसे पहले आपको स्वयं करनी होगी। जब प्रत्येक व्यक्ति "देने" की प्रवृत्ति अपनाएगा, तभी एक सच्चा सर्वोदयी समाज बन पाएगा। किसी भी समुदाय के उत्थान के लिए त्याग, सहयोग और परोपकार के गुणों को अपनाना आवश्यक है। सामाजिक जीवन की पुनर्रचना में हमें अपना व्यक्तिगत लाभ नहीं, बल्कि सबका हित साधने की नीति पर चलना पड़ेगा। सजीव और सतत समाज के निर्माण हेतु यही सर्वोदय का नैतिक सूत्र है।

सर्वोदय और सामाजिक कल्याण

सामाजिक कल्याण (सोशल वेलफ़ेयर) की अवधारणा प्राचीन काल से आधुनिक काल तक निरंतर विकसित और परिवर्तित होती रही है। जिन

सेवाओं के माध्यम से हम निर्धनों या वंचितों का कल्याण कर सकते हैं, उन्हीं सेवाओं को यदि संगठित रूप में राज्य या समाज द्वारा क्रियान्वित किया जाए तो व्यापक रूप में सामाजिक कल्याण का स्वरूप उभरकर आता है। सर्वोदय, वस्तुतः, सामाजिक कल्याण का ही विस्तृत रूप है जो संपूर्ण समाज के हित को लक्ष्य बनाता है। विभिन्न युगों में सोच के अनुसार इन कल्याण से जुड़े पदों (अवधारणाओं) का विस्तार होता गया और विचारकों ने समय-समय पर इनके नए नाम गढ़े – जैसे **सामाजिक प्रबंधन**, **सामाजिक सेवा** आदि – परंतु उन सबका लक्ष्य एक ही रहा: सबका कल्याण, और वह भी ऐसी सामाजिक भावना के साथ जिसमें **कुछेक नहीं, बल्कि सबका हित** समाहित हो। गांधीजी ने इस व्यापक सामाजिक कल्याण को **"सामाजिक सुरक्षा"** की संज्ञा दी [4]। अर्थात् राज्य या सरकारी तंत्र द्वारा संचालित जो भी योजनाएँ समाज के कमजोर वर्गों का भला करने के लिए हों, वे सभी सामाजिक सुरक्षा के अंतर्गत आती हैं।

सरकारी तंत्र द्वारा जो कल्याण कार्य किए जाते हैं, उन्हें सामाजिक सुरक्षा कहा जाता है। प्रारंभिक कल्याण कार्यक्रमों के अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा को **"स्वयं सहायक"** (Self-help) की संज्ञा दी गई थी, क्योंकि आत्म-निर्भरता को सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों की क्रमबद्ध प्रगति के लिए अतिआवश्यक माना जाता था [5]। गांधी-दर्शन में भी व्यक्ति के आत्म-प्रयास एवं नैतिक पहल को समाज-सुधार का मूल आधार माना गया है [6]। जब तक समाज के लोग स्वयं जागरूक होकर अपने उत्थान के लिए संगठित प्रयास नहीं करेंगे, तब तक सामाजिक कल्याण के कार्यक्रम अपने लक्ष्य को पूरी तरह प्राप्त नहीं कर सकते।

नागरिक क्रान्ति और लोकशक्ति

जनता की सक्रिय भागीदारी से ही सत्य एवं स्थायी सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन संभव है – यह विचार न केवल पश्चिमी चिंतन में बल्कि भारतीय समाजवादी एवं सर्वोदय दर्शन में भी प्रतिपादित होता रहा है [7]। सर्वोदय के सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन में स्पष्ट मान्यता है कि सच्चा सुधार जनता के सहयोग और नैतिक जागरण से ही संभव है [8]। इसी संदर्भ में उन्नीसवीं सदी के चार्टिस्ट आंदोलन के नेता **विलियम लोवेट** ने अपने कार्यक्रम का संक्षिप्त विवरण देते हुए जनता को संबोधित करके कहा था, "तुम्हें अपना सामाजिक एवं राजनीतिक सुधारक स्वयं बनना पड़ेगा, अन्यथा तुम कभी भी स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर सकोगे" [9]। लोवेट ने यह भी कहा कि सच्चे अर्थों में **स्वतंत्रता** न तो संसद के किसी अधिनियम द्वारा प्रदान की जा सकती है, न राजा की आज्ञा द्वारा – बल्कि स्वतंत्रता तो तभी प्राप्त होगी जब हम **'एक सब के लिए तथा सब एक के लिए'** की भावना से कार्य करेंगे [10]। स्पष्ट है कि वास्तविक आज़ादी कोई बाहरी शक्ति या शासन प्रदान नहीं कर सकता; वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति की जागृति, समान सहयोग और पारस्परिक एकता से ही प्राप्त की जा सकती है।

आधुनिक युग में नागरिकता की पहली आवश्यकता यही बन गई है कि समाज में होने वाला परिवर्तन **नागरिकों की क्रान्ति** के रूप में होना चाहिए। अब वीर (सैन्य बल) की क्रान्ति या संत (आध्यात्मिक गुरु) की क्रान्ति नहीं, बल्कि साधारण नागरिकों द्वारा संचालित क्रांति ही समाज को समग्र रूप से बदल सकती है। इसका अर्थ यह है कि राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद अब सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों में जो भी सुधार अथवा क्रान्ति हो, वह आम जनता की पहल से तथा अहिंसक तरीक़े से होनी चाहिए। ऐसे नागरिक क्रान्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति में प्रेरणा का जागरण होना अपेक्षित है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में विशिष्ट महत्त्व रखता है; इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रत्येक मनुष्य को एक **विभूति** (अद्वितीय प्रतिभा का पुंज) के रूप में मानना आवश्यक है। जब समाज प्रत्येक व्यक्ति को महत्त्व देगा और उसकी क्षमताओं को पहचानकर उसे परिवर्तन का कारक मानेगा, तभी जनता में आत्मसम्मान और जागरूकता आएगी। अब क्रान्ति की

आधारशिला राज्य या सत्ता को केंद्र में रखकर नहीं रखी जाएगी, बल्कि **लोकनिष्ठा** – जनता की निष्ठा और सहभागिता – को क्रान्ति का मुख्य आधार माना जाएगा। समाज के प्रत्येक सदस्य में यदि परिवर्तन की लौ जल उठे और वे साझा हित में सक्रिय हों, तो शांतिमय सामाजिक क्रान्ति घटित हो सकती है। स्वतंत्रता वास्तव में जनता के आत्मनिर्णय और एकजुट प्रयत्न से ही साकार होगी। स्वतंत्र भारत के इतिहास में विनोबा भावे के **भू-दान आंदोलन** को नागरिक-प्रेरित अहिंसक क्रान्ति के एक सफल उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है [11]।

क्रान्ति का मार्क्सवादी दृष्टिकोण एवं सर्वोदय

मार्क्सवाद और सर्वोदय के क्रान्ति-सिद्धांतों में मौलिक अंतर देखा जाता है। मार्क्स की वैज्ञानिक दृष्टि मुख्यतः सत्ता के सैन्यबल को जनता की नागरिक शक्ति में रूपांतरित करने पर केंद्रित थी। उन्होंने शोषण और संघर्ष पर आधारित पुराने सामाजिक ढाँचे को उलटकर आम श्रमिकों के हाथ में सत्ता सौंपने का मार्ग अपनाया। मार्क्स का मत था कि राज्य में स्थायी सेना की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए, क्योंकि राज्य का प्रत्येक नागरिक सैनिक के रूप में कार्य करेगा और अंततः वर्गविहीन समाज की स्थापना होगी। मार्क्स ने कहा कि सभी जनता को शस्त्र दे दो – अर्थात् सब लोगों को सैनिक बना दो – ताकि सैनिक और नागरिक के बीच का पुरातन अंतर समाप्त हो जाए। उनका विश्वास था कि श्रम, जीवन यापन का मात्र साधन न रहकर जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकता बन जाएगा तब सच्चा समाज सर्वोदयी भावना से कार्य कर सकेगा। उन्होंने आशा व्यक्त की थी कि जिस दिन उनकी क्रान्ति सफल होगी, उस दिन दुनिया से युद्ध का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा और सर्वत्र श्रमिकों का राज्य स्थापित हो जाएगा। तब कहीं कोई युद्ध नहीं होगा, क्योंकि शोषक-वर्ग का अंत हो चुका होगा।

लेकिन यह भी विचार किया गया है कि "मूर्ख मनुष्य के लिए संसार में कोई दवा नहीं है" – यदि कोई व्यक्ति अपनी हठधर्मिता या अज्ञानता छोड़ने को तैयार ही न हो तो उसे सुधारना असाध्य माना गया है। केवल तर्क या समझाइश से समाज में आमूल परिवर्तन हो सकता है, इस पर कई विचारकों ने शंका जताई है। जब यह मान लिया जाता है कि मानव की मूर्खता अथवा अदूरदर्शिता का कोई इलाज नहीं, तो क्रान्ति की सफलता के प्रति निराशा जन्म लेती है और यह धारणा बन जाती है कि विचार एवं संवेदनशील अपील के माध्यम से सामाजिक बदलाव लाना असंभव है [12]। सर्वोदय विचारधारा मार्क्स के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं दिखती। सर्वोदय के प्रवर्तक मानते हैं कि समाज में वास्तविक और स्थायी परिवर्तन लाने के लिए नैतिक एवं आध्यात्मिक परिवर्तन आवश्यक है। जयप्रकाश नारायण जैसे लोकसेवकों ने भी संकेत किया कि आधुनिक युग में क्रान्ति का मूल आधार लोकशक्ति की **नैतिक शक्ति** ही होगी, न कि सैन्यबल या बाहरी सत्ता [13]। विनोबा भावे द्वारा शुरू किए गए भू-दान जैसे अहिंसक जन-आंदोलन को उसके समय में क्रांतिकारी चमत्कार की संभावना के रूप में व्यापक रूप से नहीं पहचाना गया। इसका एक कारण यह था कि उस आंदोलन की शक्ति को तत्कालीन दृष्टिकोण से चमत्कारिक मानने के बजाय संशय की दृष्टि से देखा गया। जबकि सत्याग्रही सर्वोदय दृष्टिकोण से देखें तो किसी भी क्रान्ति में मानवीय हृदय-परिवर्तन रूपी चमत्कार शामिल होता है – बलपूर्वक नहीं बल्कि आत्मिक जागरण से होने वाला परिवर्तन ही स्थायी और कल्याणकारी क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि **मार्क्सवाद** स्वयं विभिन्न बौद्धिक परंपराओं के समन्वय से निर्मित एक विचारधारा है – जर्मन अभिजात दर्शन, ब्रिटिश शास्त्रीय अर्थशास्त्र तथा फ्रांसीसी आदर्शवादी समाजवाद, इन तीन धाराओं के संगम से मार्क्सवाद की सिद्धांत-सरचना बनी थी [14]। मगर सर्वोदय मार्ग का बल राजनीतिक या आर्थिक सिद्धांतों के मिश्रण पर नहीं, बल्कि मानव-मूल्यों के समन्वय पर है। सर्वोदयी क्रान्ति का लक्ष्य जनसाधारण के नैतिक

उद्धार के माध्यम से एक अहिंसक सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना है, जो किसी एक वर्ग या समूह का नहीं बल्कि सभी का कल्याण सुनिश्चित करे।

सांस्कृतिक मूल्य और सामाजिक पुनर्निर्माण

इतिहास पर दृष्टि डालें तो पाएंगे कि अब तक विश्व-इतिहास में जो भी परिवर्तन हुए, उन पर या तो महापुरुष संतों की छाप दिखाई देती है या वीर नायकों की। सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में लोगों ने **लोकात्मा** (जन-चेतना) को देखने के तीन दृष्टिकोण अपनाए हैं – संत, वीर और नागरिक। अतीत में संतों की अपनी आध्यात्मिक संस्कृति थी और वीरों (योद्धाओं) की अपनी सैनिक संस्कृति; दोनों की दिशाएँ भिन्न रहीं। लेकिन परिवर्तन के ये दोनों मार्ग अपने-अपने ढंग से सांस्कृतिक तत्व थे। सांस्कृतिक तत्व का एक लक्षण यह है कि मानवीय मूल्यों के विकास में जो साधन सहायक होते हैं, वे संस्कृति का रूप ले लेते हैं। एक समय ऐसा था जब शस्त्र, संपत्ति और सत्ता – ये सब जनसामान्य की जागरूकता, नैतिक शक्ति एवं विशिष्ट सामूहिक गुणों से ही प्रस्फुटित होकर मान्य हुए थे। किन्तु समय के साथ संपत्ति के प्रश्न पर और बल-प्रयोग की भूमिका पर मतभेद उभरते गए।

सर्वोदय का स्वरूप और आधार सांस्कृतिक है।

आज हमारे समक्ष जो समस्याएँ हैं, वे मुख्यतः साधनों से जुड़ी समस्याएँ हैं, न कि मूल्यों से जुड़ी। जिस दिन हम नैतिक और मानवीय मूल्यों के आधार पर समाज की रचना करने लगेंगे, उस दिन हमें अनुभव होगा कि हमारे अधिकांश आपसी मतभेद संभवतः विलीन हो गए हैं। वास्तविकता में वर्तमान मतभेद साधनों के मतभेद हैं – उद्देश्यों या आदर्शों को लेकर अधिकांश लोग सहमत हैं, असहमति है तो उन लक्ष्यों को पाने के तरीकों को लेकर। सामाजिक पुनर्निर्माण का मार्ग मूल्यों की एकरूपता के माध्यम से सुगम हो सकता है।

सामाजिक कल्याण, सामाजिक सुरक्षा, ट्रस्टीशिप (न्यासिता) – ये भिन्न-भिन्न शब्द समय के साथ व्यवहार में आते गए, लेकिन ये उसी मार्ग को आलोकित करते हैं जिस मार्ग पर हमारे समाजसेवी और चिंतक आगे बढ़ते रहे हैं। परंपरागत रूप से समाज कल्याण या सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा कुछ अंशों तक संपत्ति तथा स्वाधिकार (अधिकारों) पर आधारित रही है, और विडंबना यह है कि यही वे तत्व हैं जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करते हैं। "अपना" और "पराया" की भावना सांसारिक जीवन का प्रमुख संचालक स्रोत बन चुकी है। निजी स्वामित्व और पूर्ण सामूहिकता – इन दोनों चरम बिंदुओं के बीच में संतुलन बनाने हेतु ही सह-स्वामित्व, न्यासधारिता (ट्रस्टीशिप) तथा अन्य समाजवादी चिंतन के मार्ग विकसित हुए हैं। प्रारंभिक आदिम मानव का जीवन भी सामुदायिक (सार्वजनिक) संपत्ति के आधार पर ही आरंभ हुआ था। जैसे-जैसे समाज जटिल हुआ, निजी संपत्ति और अधिकारों का उदय हुआ, जिसने सामाजिक असमानता को जन्म दिया। उसके प्रत्युत्तर में सहकारी संपत्ति और ट्रस्टीशिप के सिद्धांत माध्यमिक मार्ग के रूप में प्रस्तुत हुए, ताकि व्यक्ति और समाज के बीच अधिकार एवं कर्तव्य का संतुलन बनाया जा सके।

प्राचीन विचारकों एवं कवियों के ग्रंथों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उन्होंने सर्वसम्मति से मनुष्य को एक **सामाजिक प्राणी** के रूप में प्रस्तुत किया है [15]। यद्यपि समाज के संगठन के संबंध में उनके विचारों में कई स्थानों पर भिन्नता भी मिलती है, किंतु मानव की सामाजिक प्रकृति पर सबने जोर दिया है। संस्कृत साहित्य के एक प्रसिद्ध सूक्तिकार (सुभाषितकार) ने कहा है कि समय के साथ **क्रान्ति की विभूति** (चरित्र) ही बदल गई है। आज क्रान्ति का सही स्वरूप तब प्रकट होगा जब प्रत्येक नागरिक को समाज में अपना सही प्रतिबिंब दिखाई देगा – अर्थात् जब समाज का हर व्यक्ति सक्रिय रूप से परिवर्तन की प्रक्रिया में शामिल होगा, तब क्रान्ति वास्तविक अर्थों में जन-क्रान्ति बनेगी। जब प्रत्येक नागरिक की शक्ति सामूहिक हित में लगाई जाएगी तभी किसान जैसे

समाज के अंतिम व्यक्ति की आवश्यकताएँ और उसके वास्तविक हित एकरूप हो पाएंगे। दूसरे शब्दों में, क्रान्ति तब सार्थक होगी जब समाज का प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक सदस्य, परिवर्तन का वाहक बन जाएगा और तब समाज का कोई तबका उपेक्षित नहीं रहेगा।

वैज्ञानिक चेतना और सर्वोदय

आज के युग में विज्ञान एवं तकनीक मानव समाज के अभिन्न अंग बन चुके हैं, किंतु **सांस्कृतिक आधारशिला** के अभाव में विज्ञान आज कुछ हद तक निर्जीव-सा दिखाई देता है। वैज्ञानिक भी सत्ताधारियों के प्रभुत्व तले बोझिल महसूस कर रहे हैं; उनके स्वतंत्र शोध और विकास कार्य कहीं-न-कहीं राजनैतिक हितों के लिए बाध्य किए जा रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों में सैनिक भी वैज्ञानिकों को इस दबाव से नहीं उबार सकता, क्योंकि स्वयं सैन्य शक्ति भी राजनेताओं के सामने नगण्य सिद्ध होती है। विडंबना यह है कि राजनेता नहीं चाहते कि वैज्ञानिक स्वतंत्र रूप से विकास करें; सत्ता में बैठे लोग वैज्ञानिकों को महज़ चुनावी राजनीति का उपकरण (जैसे "पोलिंग एजेंट") बनाकर रखना चाहते हैं। जिस देश के विकास का दारोमदार इन महान वैज्ञानिकों पर है, यदि वही वैज्ञानिक सामाजिक कल्याण के कार्यों के बजाय राजनीति के उपकरण बनकर रह जाएंगे, तो समाज का समग्र विकास कैसे होगा? स्पष्ट है कि इस प्रकार सर्वोदय के सांस्कृतिक मूल्यों – जिसमें ज्ञान-विज्ञान को मानवता की भलाई के लिए उपयोग में लाना शामिल है – का समाज में प्रसार बाधित होगा।

ऐसी परिस्थिति में वैज्ञानिक प्रगति में महत्ती भूमिका साधारण **नागरिक** ही निभा सकते हैं। आम नागरिक ही वैज्ञानिकों को उस बंधन से उबारने में समर्थ हो सकते हैं, बशर्ते उनके व्यक्तित्व में कुछ विशिष्ट गुणों का विकास किया जाए। आवश्यक है कि साधारण नागरिकों को विज्ञान और तकनीक की ओर उन्मुख किया जाए, उनमें नवीनता के प्रति जिज्ञासा और समर्पण का भाव भरा जाए। जब समाज का एक तबका वैज्ञानिक चेतना से संपन्न होकर उठ खड़ा होगा, तब वह पूरे समाज को ऊपर उठाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। हमें सृष्टि को अपने उपभोग योग्य वस्तुओं के भंडार के रूप में देखने की मानसिकता बदलनी होगी। इसके बजाय, सृष्टि को जीवन की **विभूति** (गरिमा) मानना होगा, जिसमें प्रकृति के प्रत्येक तत्व का मूल्य है। हमें अपनी पशुता से ऊपर उठकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना होगा, साथ ही पशु-पक्षियों एवं समस्त जीव-जंतुओं को भी जीवन की विभूति के रूप में देखना होगा। जब हम सब एक दूसरे के सुख-दुःख का विचार करने लगेंगे, तब हमारा व्यक्तिगत सुख, हमारा स्वार्थ और पूरे समाज का हित एकरूप हो जाएगा। ऐसी समग्र दृष्टि से युक्त समाज में ही सफल सर्वोदयी क्रांति का मार्ग प्रशस्त होगा।

निष्कर्ष

हम आज ऐसे समाज में रह रहे हैं जहाँ एक ओर भौतिक संसाधनों की प्रचुरता है और दूसरी ओर बौद्धिक शक्तियों का भी भरपूर विकास हुआ है। इसके बावजूद हमारे समाज में वास्तविक **शांति** का अभाव दृष्टिगोचर होता है। मानव स्वभाव के निचले प्रवृत्तियों – जैसे लोभ, अविश्वास, विभाजन – ने आधुनिक मनुष्य को अंदर से व्याकुल और असंतुष्ट कर दिया है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर विश्वास नहीं करता और समय-समय पर प्रतिशोध की भावना से ओत-प्रोत विदेश नीति अपनाता है। व्यक्ति भी व्यक्ति को सन्देह की दृष्टि से देखता है। यह स्थिति बताती है कि आधुनिक संकट भौतिक या बौद्धिक नहीं है, बल्कि मुख्यतः नैतिक एवं आध्यात्मिक है। मानव-मन में व्याप्त अविश्वास, चिंता और निराशा को दूर करने के लिए एक नई नैतिक शिक्षा एवं आध्यात्मिक जागरण परम आवश्यक हो गया है।

समाज को पुनर्गठित करने से पहले हमें अपने आप को बदलना होगा और अपने भीतर नवीन आत्मिक मूल्यों का **पुनर्निर्माण** करना होगा। हमें अपना खोया हुआ आपसी विश्वास फिर से अर्जित करना होगा। सर्वोदय का मार्ग हमें आत्मशुद्धि और परहित की उस दिशा में लेकर जाता है जहाँ हर व्यक्ति अपने भीतर मानव मात्र

के कल्याण की भावना धारण करे। जब तक व्यक्ति स्वयं नैतिक रूप से दृढ़ और उदार नहीं बनता, तब तक किसी बाहरी व्यवस्था में परिवर्तन लाकर स्थायी सुधार नहीं किया जा सकता। अतः सर्वप्रथम व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भरोसा, सहानुभूति और नैतिक बंधन को सुदृढ़ करना होगा। यही सर्वोदय का संदेश है कि व्यक्तिगत उत्थान, नैतिक जागृति और सबके प्रति आत्मीयता से ही संपूर्ण समाज का उदय संभव है। जब प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर परोपकार और सहअस्तित्व के गुणों को विकसित करेगा, तभी समाज में सत्य, अहिंसा, शांति और समानता पर आधारित स्थायी सांस्कृतिक उत्थान – अर्थात् सच्चा सर्वोदय – साकार होगा।

संदर्भ सूची :

1. दादा, धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, सर्व-सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1957, पृष्ठ 27.
2. फड़िया, बी.एल. : पाश्चात्य राजनीतिक विचारकों का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 1995, पृष्ठ 214.
3. गाबा, ओ.पी. : राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा, मयूर पेपर बुक्स, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ 57.
4. गाँधी, एम.के. : सर्वोदय, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1955, पृष्ठ 64.
5. शर्मा, वी.पी. : भारत में सामाजिक परिवर्तन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1999, पृष्ठ 127.
6. सिंह, प्रताप : गाँधीजी का दर्शन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1989, पृष्ठ 97.
7. शास्त्री, प्रकाश : सोशलिस्ट थॉट इण्डिया, प्रिटनेल पब्लिकेशन, जयपुर, 1985, पृष्ठ 33.
8. सिन्हा, अर्चना : सर्वोदय का सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1989, पृष्ठ 216.
9. दादा, धर्माधिकारी : चुनाव प्रस्ताव का अर्थ, अखिल भारतीय सर्व सेवा-संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1957, पृष्ठ 104.
10. भावे, विनोबा : चुनाव (अखिल भारतीय), सर्व-सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1957, पृष्ठ 90.
11. भावे, विनोबा : सर्वोदय विचार और स्वराज, सर्व-सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1958, पृष्ठ 72ध्याय.
12. आचार्य, राममूर्ति : जे.पी. का वर्ग संघर्ष, सर्व-सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1977, पृष्ठ 112.
13. माधवन, आनन्द शंकर : गाँधी साधना का मार्ग संधान, अमरावती मंदिर विद्यापीठ, भागलपुर (बिहार), 1986, पृष्ठ 145.
14. ग्रे, एलेक्जेन्डर : दी सोशल स्टेडी ट्रेडिशन (मार्क्स टू लेनिन), लोगमंश ग्रीन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लन्दन, 1963, पृष्ठ 95.
15. बार्कर, एरनेस्ट : ग्रीक पोलटिकल थ्योरी, मैथ्यून एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लन्दन, 1960, पृष्ठ 156.

•